राजस्थानी साहित्य को जैन संत कवियों की देन

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत

राजस्थान : वीरभूमि, धर्मभूमि

राजस्थान वीरभूमि होने के साथ-साथ धर्मभूमि भी है। शक्ति और भक्ति का सामंजस्य इस प्रदेश की मूल विशेषता है। यहाँ के वीर भक्तिभावना से प्रेरित होकर अपनी अद्‌भुत शौर्यवृत्ति का प्रदर्शन करते रहे तो यहाँ के भक्त अपने पुरुषार्थ, साधना और शक्ति के बल पर धर्म का तेज निखारते रहे। यहाँ शैव, वैष्णव, जैन आदि सभी धर्मों को समान रूप से फलने-फूलने का अवसर और आदर मिला।

जैन मान्यता के अनुसार इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए जिनमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का समय ईस्वी पू० छठी शती है। भगवान् महावीर का निर्वाण हुए आज पच्चीस सौ तेरह वर्ष हो गये हैं। इनके निर्वाण के साथ ही तीर्थंकरों की परम्परा समाप्त हो गई। महावीर के बाद उनके धर्म-शासन को आर्य सुधर्मा और जम्बू स्वामी जैसे केवलियों, प्रभवस्वामी और भद्रबाहु जैसे श्रुतकेवलियों तथा स्थूलिभद्र, महागिरी, सुहस्ती देवर्द्धिगणि क्षमा-श्रमण, कुन्द-कुन्द जैसे आचार्यों ने आगे बढ़ाया।

राजस्थान में जैनधर्म

राजस्थान में जैन धर्म की विद्यमानता का संकेत ईस्वी पू० पाँचवी शती से मिलता है। अजमेर जिले के बड़ली नामक गांव से प्राप्त शिलालेख में भगवान् महावीर के निर्वाण के ८४ वें वर्ष का तथा चितौड़ के समीप स्थित मध्यमिका नामक स्थान का उल्लेख है। इससे सूचित होता है कि सम्राट् अशोक से पूर्व राजस्थान में जैनधर्म का प्रचार-प्रसार था। अशोक के पौत्र राजा सम्प्रति ने जैन धर्म के उन्नयन और विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। उसने राजस्थान में कई जैन मन्दिर बनाये। यह भी कहा जाता है कि वीर निर्वाण संवत् २०३ में आर्य सुहस्ती के द्वारा उसने घांवणी में पद्मप्रभ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी थी।

विक्रम की दूसरी शती में बने मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई से अति प्राचीन स्तूप और जैनमन्दिर के ध्वंसावशेष मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि राजस्थान में उस समय जैन-धर्म का अस्तित्व था। केशोरायपाटन में गुप्तकालीन एक जैनमन्दिर के अवशेष से, सिरोही क्षेत्र के बसन्तगढ़ में प्राप्त भगवान् ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा से, जोधपुर क्षेत्र के ओसियाँ नामक गांव के महावीर मन्दिर के शिलालेख से, कोटा की समीपवर्ती जैन गुफाओं से, उदयपुर के पास स्थित आयड़ के पार्श्वनाथ मन्दिर और जैसलमेर के लोदरवा स्थित जिनेश्वर सूरि की प्रेरणा से निर्मित पार्श्वनाथ के मन्दिर से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान में जैनधर्म का प्रचार ही नहीं था, वरन् सभी क्षेत्रों में उसका अच्छा प्रभाव भी था।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में धर्म ही दीप है
Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

अजमेर क्षेत्र में भी जैनधर्म का व्यापक प्रभाव रहा। यहाँ के राजा वर्णीराज के मन में श्री जिनदत्त सूरि के प्रति विशेष सम्मान का भाव था। जिनदत्त सूरि मरुधरा के कल्पवृक्ष माने गये हैं। उनका स्वर्गवास अजमेर में हुआ। दादाबाड़ियों का निर्माण उन्हीं से शुरु हुआ।

कुमारपाल के समय में हेमचन्द्र की प्रेरणा से जैनधर्म का विशेष प्रचार हुआ। आबू के जैनमन्दिर जो अपनी स्थापत्यकला के लिए विश्वविख्यात हैं, उसी काल में बने। पन्द्रहवीं शती में निर्मित राणकपुर का जैनमन्दिर भी भव्य और दर्शनीय है। इसके स्तम्भ अपने शिल्प और कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध हैं। जयपुरक्षेत्रीय श्री महावीरजी और उदयपुर क्षेत्रीय श्री केसरियानाथजी के मन्दिर ने जैनधर्म की प्रभावना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ये तीर्थस्थल सभी धर्मों व वर्गों के लिए श्रद्धाकेन्द्र बने हुए हैं। इस क्षेत्र के मीणा और गूजर लोग भगवान् महावीर और ऋषभदेव को अपना परम आराध्य मानते हैं।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि महावीर के निर्वाण के लगभग ६०० वर्ष बाद जैन-धर्म दो मतों में विभक्त हो गया—दिगम्बर और श्वेताम्बर। जो मत साधुओं की नग्नता का पक्षधर था और उसे ही महावीर का मूल आचार मानता था, वह दिगम्बर कहलाया। यह मूल संघ नाम से भी जाना जाता है। और जो मत साधुओं के वस्त्र, पात्र का समर्थन करता था, वह श्वेताम्बर कहलाया। आगे चलकर दिगम्बर सम्प्रदाय कई संघों में विभक्त हो गया, जिनमें मुख्य हैं—द्राविड़संघ, काष्ठासंघ और माथुरसंघ। कालान्तर में शुद्धाचारी, तपस्वी दिगम्बर मुनियों की संख्या कम हो गई और नये भट्टारक वर्ग का उदय हुआ जिसकी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सेवायें रही हैं। जब भट्टारकों में शिथिलाचार पनपा तो उसके विरुद्ध सत्रहवीं शती में एक नये पंथ का उदय हुआ जो तेरहपंथ कहलाया। इस पंथ में टोडरमल जैसे विद्वान् दार्शनिक हुए। श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी आगे चलकर दो भागों में बंट गया—चैत्यवासी और वनवासी। चैत्यवासी उग्रविहार छोड़कर मन्दिरों में रहने लगे। कालान्तर में श्वेताम्बर सम्प्रदाय कई गच्छों में विभक्त हो गया। इनकी संख्या ८४ कही जाती है। इनमें खरतरगच्छ व तपागच्छ प्रमुख हैं। कहा जाता है कि वर्धमान सूरि के शिष्य जिनेश्वर सूरि ने गुजरात के अणहिलपुर पट्टण के राजा दुर्लभदेव की सभा में जब चैत्यवासियों को परास्त किया तो राजा ने उन्हें 'खरतर' नाम दिया और इस प्रकार खरतरगच्छ नाम चल पड़ा। तपागच्छ के संस्थापक श्री जगतचन्द्र सूरि माने जाते हैं। संवत् १२८५ में उन्होंने उग्रतप किया। इस उपलक्ष्य में मेवाड़ के महाराणा ने इन्हें 'तपा' उपाधि से विभूषित किया। तब से यह गच्छ 'तपागच्छ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। खरतरगच्छ और तपागच्छ दोनों ही मूर्ति-पूजा में विश्वास करते हैं।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती में संतों ने धर्म के नाम पर पनपने वाले बाह्य आडम्बर का विरोध किया, इससे भगवान् की निराकार उपासना को बल मिला। श्वेताम्बर परम्परा में स्थानकवासी और तेरापंथ अमूर्तिपूजक हैं। ये मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते। स्थानकवासियों का सम्बन्ध गुजरात की लोकागच्छ परम्परा से रहा है। राजस्थान में यह परम्परा शीघ्र ही फैल गयी और जालौर, सिरोही, जैतारण, नागौर, बीकानेर आदि स्थानों पर इसकी गद्दियाँ प्रतिष्ठापित हो गयीं। इस परम्परा में जब आडम्बर बढ़ा तब जीवराजजी, हरजी, धन्नाजी पृथ्वीचन्दजी, मनोहरजी आदि पूज्य मुनियों ने तप-त्याग मूलक सद्धर्म का प्रचार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानकवासी परम्परा बाईस सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस परम्परा में भूधरजी, जयमल्लजी, रघुनाथजी, रतनचन्द्रजी, जवाहरलालजी, चौथमलजी, आदि प्रभावशाली आचार्य और संत हुए हैं।

श्वेताम्बर तेरापन्थ सम्प्रदाय के मूल संस्थापक आचार्य भिक्षु हैं। यह पंथ सैद्धान्तिक मतभेद के कारण संवत् १८१७ में स्थानकवासी परम्परा से अलग हुआ। इस पंथ के चौथे आचार्यजी श्री जयाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं, राजस्थानी के महान् साहित्यकार थे। उन्होंने तेरापंथ के लिए कुछ मर्यादायें निश्चित कर मर्यादा-महोत्सव का सूत्रपात किया। इस पंथ के वर्तमान नवम आचार्य श्री तुलसीगणी हैं, जिन्होंने अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से नैतिक जागरण की दिशा में विशेष पहल की है और जो राजस्थानी भाषा के सरस कवि हैं।

राजस्थान में जैनधर्म के विकास और प्रसार में इन सभी जैनमतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैनधर्म के विभिन्न आचार्यों, सन्तों और श्रावकों का जन-साधारण के साथ ही नहीं वरन् यहाँ के राजा और महाराजाओं के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रभावशाली जैन श्रावक यहाँ राज-मन्त्री, सेनापति, सलाहकार और किलेदार जैसे विशिष्ट उच्चपदों पर रहे हैं। उदयपुर क्षेत्र के रामदेव, सहणा, कर्माशाह, भामाशाह क्रमशः महाराणा लाखा, कुम्भा, सांगा और प्रताप के राज-मन्त्री थे। कुंभलगढ़ के किलेदार आसाशाह ने बालक राजकुमार उदयसिंह का गुप्त रूप से पालन-पोषण कर अपने अदम्य साहस और स्वामीभक्ति का परिचय दिया था, बीकानेर के मन्त्रियों में वत्सराज, कर्मचन्द बच्छावत, वरसिंह, संग्रामसिंह, आदि की सेवायें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। बीकानेर के महाराजा रायसिंह, करणसिंह, सूरतसिंह ने क्रमशः जैनाचार्य जिनचन्द्र सूरि, धर्मवर्द्धन, व ज्ञानसार को बड़ा सम्मान दिया। जोधपुर राज्य के मन्त्रियों में मेहता रायचन्द्र, वर्धमान आसकरण, मूणोत नेणसी और इन्द्रराज सिंघवी का विशेष महत्त्व है। जयपुर के जैन दीवानों की लम्बी परम्परा रही है। इनमें मुख्य हैं—मोहनदास, संघी हुकुमचन्द, विमलदास छाबड़ा, रामचन्द्र छाबड़ा, कृपाराम पण्ड्या। अजमेर का धनराज सिंघवी भी महान् योद्धा था। इन सभी वीर मन्त्रियों ने न केवल शासन-व्यवस्था की सुदृढ़ता में योग दिया वरन् राजस्थानी साहित्य और कला के विकास व उन्नयन के लिए अनुकूल अवसर भी प्रदान किया।

जैन सन्तों के साहित्य का धरातल

जैन सन्तों की आत्मोत्थान और राष्ट्रोत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उनका समग्र जीवन अहिंसा, संयम, तप, त्याग और लोककल्याण के लिये समर्पित रहा है। सांसारिक मोह-माया और घर-गृहस्थी के प्रपंच से छूट कर ये जब श्रमण दीक्षा अंगीकार करते हैं तब नितान्त अपरिग्रही बन जाते हैं। न इनका अपना ठहरने का कोई निश्चित स्थान होता है न जीवनयापन के लिए ये कोई संग्रह करते हैं। वर्षाऋतु के चार महीनों के अतिरिक्त ये कहीं स्थायी रूप से ठहरते नहीं। वर्ष के शेष आठ महीनों में ग्रामानुग्राम पदयात्रा करते हुए, जीवन को पवित्र और सदाचारयुक्त बनाने की प्रेरणा और देशना देना ही इनका मुख्य लक्ष्य रहता है। अपना जीवन ये सद्गृहस्थों से भिक्षा लाकर चलाते हैं। इनकी भिक्षावृत्ति को मधुकरीवृत्ति या गोचरी कहा गया है। ये अपने पास एक कौड़ी तक नहीं रखते और वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि मिलाकर इतनी ही सामग्री रखते हैं कि पद-यात्रा में ये स्वयं उठा सकें।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न किसी के प्रति इनका राग होता है न द्वेष। प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव रखते हुए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का ये कठोरता के साथ पालन करते हैं। इनका अधिकांश समय ध्यान, स्वाध्याय, साधना और लोकोपदेशना में ही व्यतीत होता है।

आचारगत पवित्रता और मर्यादा के परिणामस्वरूप जैनसन्तों द्वारा सृजित साहित्य शब्दों का विलास न होकर आत्मा का उल्लास और नैतिक जागरण का माध्यम होता है। मानव अपने विकारों पर विजय प्राप्त कर सके, इस प्रक्रिया को विभिन्न रूपों और प्रकारों से जनसामान्य को समझाना, जैन साहित्य का मूल उद्देश्य है। यह 'समझ' जन-सामान्य के हृदय को छू सके, इस प्रयोजन को ध्यान में रख कर ये सन्त अपनी बात लोकभाषा में लोक-कथाओं और लोक-विश्वासों को आधार बनाकर कहने के विशेष अभ्यासी रहे हैं। लोक जीवन से इतना निकट उतर कर भी ये शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ नहीं हैं। शास्त्रीयता और सहजता, पण्डितता और सरलता, धार्मिकता और लौकिकता का जो सामंजस्य इनकी साहित्य-प्रक्रिया में दृष्टिगत होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

अपने आचार-नियमों के प्रति अत्यन्त कठोर होते हुए भी ये कवि युग की नब्ज को पहचानने में विशेष दक्ष व संवेदनशील रहे हैं। एक अमुक धर्मविशेष का आस्था में पलकर भी ये विचारों में उदार मानववादी रहे हैं। पदयात्रा इनके धर्म का अंग होने से इनका जन-जीवन से निकट का सम्पर्क सधता चलता है। विभिन्न क्षेत्रों और अनुभवों के लोगों का सम्पर्क इन्हें समय की वर्तमानता और जीवन की यथार्थ स्थितियों से बराबर जोड़े रखता है। परिणामस्वरूप इनके साहित्य में एक विशेषप्रकार की ताजगी और आत्मीयतापूर्ण संबंधों की गन्ध मिलती है। कथ्यगत शालीनता और शिल्पगत वैविध्य इसका प्रतीक है।

जैन सन्त जीवन और शास्त्रों के गूढ़ अध्येता रहे हैं। व्यक्ति की गरिमा, स्वतन्त्रता और समानता के ये जबरदस्त समर्थक रहे हैं। इनकी चिन्तना का मूल आधार यह रहा है कि व्यक्ति का विकास किसी परोक्ष सत्ता द्वारा नियन्त्रित न होकर, व्यक्ति के स्वयं के पुरुषार्थ द्वारा संचालित है। व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसीके अनुरूप उसे सुख-दुःखात्मक फल भोगने पड़ते हैं। कर्मवाद का यह सिद्धान्त व्यक्ति को तथाकथित ईश्वरीय निरंकुशता के चंगुल से मुक्त कर व्यक्ति को स्वतः कर्म करने और उसे भोगने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है और इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति अपने पुरुषार्थ और साधना के बल पर उदीरणा, उद्वर्तन, अपवर्तन और संक्रमण के जरिये अपने कर्मों की अवधि को घटा-बढ़ा सकता है, कर्म फल की शक्ति को मन्द अथवा तीव्र कर सकता है और एक कर्मप्रकृति को दूसरी कर्मप्रकृति में संक्रमित भी कर सकता है।

प्रमुख जैन सन्त कवि

राजस्थान के जैन सन्त संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी सभी भाषाओं में समान रूप से साहित्य-सर्जन करते रहे हैं। हरिभद्र सूरि, उद्योतन सूरि, जयसिंह सूरि, पद्मनन्दी, जिनेश्वर सूरि, जिनचन्द्र सूरि, जिनवल्लभ सूरि, जिनकुशल सूरि, समयसुन्दर, भट्टारक शुभचन्द्र आदि प्राकृत साहित्य के, ऐलाचार्य अमृतचन्द्र, हेमचन्द्र, आशाधर, प्रभाचन्द्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकलकीर्ति, ब्रह्मजिनदास आदि संस्कृत साहित्य के प्रमुख साहित्यकार हुए हैं। प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश की ही परम्परा आगे चलकर राजस्थानी साहित्य में विस्तार को प्राप्त हुई। राजस्थानी साहित्य को समृद्ध करने वाले प्रमुख कवियों के नाम इस प्रकार हैं:—शालिभद्र सूरि, आसिग, सुमतिगणि, देल्हण, जय सागर, देपाल, ऋषिवर्धन सूरि, मतिशेखर, पद्मनाभ, धर्मसुन्दरगणि, सहजसुन्दर, पार्श्वनाथ सूरि, ठक्कुरसी, बूचराज, छीहल, विजयसमुद्र, राजशील, पुण्यसागर, कुशललाभ, मालदेव, हीरकलश, कनकसोम, हेमरत्न सूरि, रायमल्ल, हर्षकीर्ति, ब्रह्मजिनदास, विद्याभूषण, रत्नकीर्ति, गुणविनय, समयसुन्दर, सहजकीर्ति, श्रीसार, जिनराजसूरि, जिनहर्ष, लब्धोदय, धर्मवर्धन, कीर्तिसुन्दर, कुशलधीर, जिनसमुद्र सूरि, जयमल्ल, संत भीसणजी, रायचन्द्र, आसकरण, सबलदास, दुर्गादास, लालचन्द, रतनचन्द्र, चौथमल, जयाचार्य, मनीराम, सुजानमल, नेमिचन्द्र, माधवमुनि आदि।

जैन सन्तों की तरह जैन साध्वियों का भी साहित्य-निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रमुख कवयित्रियों के नाम इस प्रकार हैं:—विनयचूला, पद्मश्री, हेमश्री, हेमसिद्धि, विवेकसिद्धि, विद्यासिद्धि, हरकूबाई, हुलासा, सरूपां बाई, जड़ावजी, भूरसुन्दरी आदि।

जैनकाव्य की विशेषताएं

जैनकाव्य विविध और विशाल है। यद्यपि इसका मूल स्वर शान्त रसात्मक है पर जीवन के सभी पक्षों को इसने स्पर्श किया है। रसात्मक साहित्य के साथ-साथ ज्ञानात्मक साहित्य भी विपुल परिमाण में रचा गया है। यथा ज्योतिष, गणित, वैद्यक, योग सम्बन्धी साहित्य।

जैन काव्य की यह विशेषता विषय तक ही सीमित नहीं है, रूप और शैली में भी महाकाव्य तथा खण्ड काव्य के बीच कई स्तरों पर शताधिक नवीन काव्य रूप खड़े किये गये।

पद्य के क्षेत्र में जो काव्यरूप उभरे, उन्हें इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है:—

(क) चरित काव्य

इनमें सामान्यत: जैन तीर्थंकरों, आचार्यों और विशिष्ट महापुरुषों के जीवन आख्यान को पद्य में बांधा गया है। ये आख्यान विशेषत: प्रबंधात्मक और गौणत: मुक्तक हैं। इनमें चरित्रनायक का पूर्वभव, जन्म, माता-पिता, शैशवकाल, विवाह, वैराग्य, संयमधारण, कठोर साधना, मृत्यु आदि का वर्णन है। ये चरित प्राय: विभिन्न सर्गों, अध्यायों या ढालों में विभक्त हैं। इस वर्ग में रास, रासो, चौपाई, चौपई, सन्धि, चर्चरी, ढाल, प्रबन्ध, चरित, आख्यान, कथा, पवाड़ा, आदि काव्यरूप आते हैं।

(ख) ऋतु काव्य

इनमें सामान्यत: ऋतुओं एवं लौकिक उत्सवों पर लिखे गये काव्य रूप सम्मिलित किये जा सकते हैं। फागु, धमाल, बारहमासा, धवल, मंगल आदि ऐसे ही काव्य हैं। फागु काव्य मूलत: वसंतोत्सव से सम्बन्धित है। धमाल में किसी उत्सवविशेष की चहलपहल, उत्साहवर्द्धकता, मस्ती और मादकता चित्रित की जाती है। बारहमासा में नायिका की विरह-व्यथा प्रत्येक मास के ऋतुपरिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में व्यंजित की जाती है। धवल और मंगल काव्य विवाहादि मांगलिक उत्सवों और तत्सम्बन्धी गीतों से सम्बन्धित हैं।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) नीतिकाव्य

जैन काव्य की मूल प्रवृत्ति औपदेशिक भावना है। संसार की असारता, काया की नश्वरता, व्यसन-त्याग, क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग, तप का माहात्म्य, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रतों का धारण, भाव शुद्धि, दान की महत्ता, संयम की कठोरता आदि अनेक नैतिक उपदेश संवाद, कक्का, मातृका, बावनी कुलक, हीयाली, बारहखड़ी आदि काव्यरूपों में दिये जाते हैं। संवाद में दो मूर्त-अमूर्त भावनाओं में कृत्रिम विरोध का झगड़ा खड़ा कर एक-दूसरे को नीचा दिखाते हुए, शुभ संकल्प और धर्मतत्त्व की विजय दिखायी जाती है। कक्का, बावनी, बारहखड़ी आदि काव्यरूपों में देवनागरी लिपि के वर्णक्रम को आधार बनाकर, कोई न कोई नीति की बात कही जाती है।

(घ) स्तुतिकाव्य

इस वर्ग में जैन तीर्थंकरों, धर्माचार्यों, धर्मगुरुओं, विशिष्ट सन्त-सतियों आदि का गुण-कीर्तन किया जाता है। तीर्थंकरों में ऋषभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी की स्तुति विशेषरूप से की गई है। विहरमानों की स्तुति में बीसी संज्ञक काव्यरूप लिखे गये हैं। तीर्थस्थानों की महत्ता में तीर्थमाला, चैत्य परिपाटी आदि काव्यरूप रखे गये। स्तुति काव्य के प्रमुख रूप हैं—स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, विनति, गीत, नमस्कार, चौबोसी, बीसी, तीर्थमाला आदि।

जैन पद्य की तरह जैन गद्य भी काफी समृद्ध और विपुल परिमाण में मिलता है। यह गद्य दो रूपों में मिलता है— स्वतन्त्र मौलिक सृजन के रूप में और टीका तथा अनुवाद के रूप में। स्वतन्त्र गद्य के क्षेत्र ऐतिहासिक और कलात्मक गद्य के रूप में तथा टीकात्मक गद्य के क्षेत्र में टब्बा और बालावबोध के रूप में कई काव्य रूप विकसित हुए। संक्षेप में उन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(क) ऐतिहासिक गद्य

धार्मिक गद्य के साथ-साथ जैन विद्वानों ने ऐतिहासिक गद्य को भी प्रारम्भिक सहयोग दिया। इन विद्वानों ने गुर्वावली, पट्टावली, वंशावली, उत्पत्तिग्रन्थ, दफ्तरबही, ऐतिहासिक टिप्पण आदि विविध काव्य रूपों में इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री को सुरक्षित रखा। गुर्वावली में गुरु-परम्परा का विस्तृत और विश्वस्त चरित्र वर्णित रहता है। पट्टावली में गच्छविशेष के पट्टधर आचार्यों का जन्म, दीक्षा, साधनाकाल, विहार, मृत्यु आदि का विवरण तथा उनकी शिष्य-संपदा और प्रभावना का यथातथ्य चित्रण निहित रहता है। उत्पत्ति ग्रन्थ में किसी सम्प्रदायविशेष की उद्‌भवकालीन परिस्थितियों का तथा उसके प्रवर्तन के कारणों आदि का वर्णन होता है। वंशावली में जैन श्रावकों की वंश-परम्परा का वर्णन दिया जाता है। दफ्तरबही एक प्रकार की डायरी शैली है, जिसमें रोजनामचे की भाँति दैनिक व्यापारों का विवरण लिखा जाता है। ऐतिहासिक टिप्पण एक प्रकार के स्फुट ऐतिहासिक नोट हैं जिन्हें व्यक्तिविशेष ने अपनी रुचि ने अनुसार संगृहीत कर लिया है।

(ख) कलात्मक गद्य

कलात्मक गद्य के वचनिका, ददावेत, सिलोका, वर्णक ग्रन्थ; बात आदि काव्यरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकसित हुए हैं। इस गद्य की यह विशेषता है कि इसमें अनुप्रासात्मक और अन्त्यानुप्रासमूलक शैली का प्रयोग किया जाता है। गद्य की तुकात्मकता संक्षेप में इन काव्यरूपों की सामान्य विशेषता है। हिन्दी में आधुनिक युग में चलकर जिस गद्य काव्य की सृष्टि की गयी, उसके मूल उत्स इन काव्यरूपों में ढूंढे जा सकते हैं। यह अलग बात है कि दोनों के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर रहा हो।

(ग) टीकात्मक गद्य

टीकात्मक गद्य के निर्माण में जैन विद्वानों का योग सबसे अधिक रहा है। यह गद्य पाँच रूपों में हमारे सामने आया—चूर्णि, अवचूर्णि, टव्वा, बालावबोध, और वचनिका। चूर्णि में मूल गाथा का विवेचन और विश्लेषण बड़ी गहराई और सूक्ष्मता के साथ किया जाता है। एक प्रकार से विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं से उनका मन्थन कर दिया जाता है, इसलिए इस रूप को 'चूर्णि' कहा गया। 'अवचूर्णि' चूर्णि का संक्षिप्त रूप है। 'टव्वा' एक प्रकार की सामान्य शैली है जिसमें मूल शब्द का अर्थ ऊपर-नीचे या पार्श्व में दे दिया जाता है। 'बालावबोध' एक विशेष प्रकार की टीकाशैली है जिसमें मूल ग्रन्थ की व्याख्या ही नहीं की जाती, वरन् मूल सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न कथायें भी दी जाती हैं। इस टीका को इतने सहज भाव से लिखा जाता है कि इसे बालक जैसा अपढ़ या मन्द बुद्धिवाला व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। सम्भव है इसीलिए उसे 'बालावबोध' संज्ञा दी गयी है। 'वचनिका' मूलग्रन्थ का भाषानुवाद है, जो कलात्मक गद्य की वचनिका विधा से नितान्त भिन्न है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैनकवियों ने पद्य और गद्य दोनों क्षेत्रों में काव्यरूप सम्बन्धी कई नवीन प्रयोग किये। ये प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन के लिए न होकर लोक मानस को प्रबुद्ध और संवेदनशील बनाने के लिए हुए। इन प्रयोगों से यह लाभ हुआ कि काव्यरूपों की गतानुगतिक परम्परा, शास्त्रीयता के बन्धन से सहजता की ओर, कटिबद्धता से लौकिकता की ओर, और बने-बनाये सांचों से बाहर निकलकर लोकजीवन के व्यापक सांस्कृतिक परिवेश की ओर बढ़ी, प्रवाहित हुई।

जैनकवि काव्य को कलाबाजी नहीं समझते। वे उसे अकृत्रिम रूप से हृदय को प्रभावित करने वाली आनन्दमयी कला के रूप में देखते हैं। जहाँ उन्होंने लोकभाषा का प्रयोग किया वहाँ भाषा को अलंकृत करने वाले सारे उपकरण ही लोक-जगत से ही चुने हैं। जैनेतर कवियों में (विशेष कर चारणी शैली में लिखित काव्य) जहाँ भाषा को विशेष प्रकार के शब्द चयन द्वारा, विशेष प्रकार के अनुप्रास प्रयोग (वयण सगाई आदि) द्वारा और विशेष प्रकार के छन्दोऽनुबद्ध द्वारा एक विशेष प्रकार का आभिजात्य गौरव और रूप दिया है, वहाँ जैनकाव्य भाषा को अपने प्रकृत रूप में ही रखकर प्रभावशाली और प्रेषणीय बना सके हैं। यहाँ अलंकारों के लिए आग्रह नहीं। वे अपने आप परम्परा से युगानुकूल चले आ रहे हैं। शब्दों में अपरिचित-सा अकेलापन नहीं, उनमें पारिवारिक सम्बन्धों का सा उल्लास है। छन्दों में तो इतना वैविध्य है कि सभी धर्मों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों से वे सीधे खिंचे चले आ रहे हैं। ढालों के रूप में लोक देशियाँ अपनाई गई हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का जो प्रयोग किया गया है वे शास्त्रीय कम और लौकिक अधिक हैं। पर इस विश्लेषण से यह न समझा जाये कि उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण था या बिलकुल ही नहीं था। ऐसे कवि भी

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त हैं जो शास्त्रीय परम्परा में सर्वोच्च ठहरते हैं, आलंकारिक चामत्कारिता, शब्दक्रीड़ा और छन्दशास्त्रीय मर्यादा-पालन में होड लेते प्रतीत होते हैं। पर यह प्रवृत्ति जैन साहित्य की सामान्य वृत्ति नहीं है। शैलीगत समन्वय भावना के दर्शन वहाँ स्पष्ट हो जाते हैं, जहाँ वे अपने नायक को मोहन और नायिका को गोपी कह देते हैं। लगता है जिस समय वैष्णव धर्म और वैष्णव साहित्य का अत्यन्त व्यापक प्रचार था, उस समय जन-साधारण को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए इन साहित्यकारों ने अपने साहित्य में कृष्ण, राधा, गोपी, गोप, गोकुल; मुरली, यशोदा, जमुना, आदि शब्दों को स्थान दे दिया। विभिन्न देशिया तो लगभग वैष्णव प्रभाव को ही सूचित करती हैं।

जैनकाव्य में जो नायक आये हैं उनके दो रूप हैं, मूर्त्त और अमूर्त्त। मूर्त्त नायक मानव हैं, अमूर्त्त नायक मनोवृत्ति विशेष। मूर्त्त नायक साधारण मानव कम, असाधारण मानव अधिक हैं। यह असाधारणता आरोपित नहीं, अर्जित है। अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के बल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी में पहुँच गये हैं। ये विशिष्ट श्रेणी के लोग त्रेसठशलाका पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, और प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त सोलह सतियाँ, स्थूलिभद्र, जम्बूस्वामी, सुदर्शन, गजसुकुमाल, श्रेणिक, श्रीपाल, धन्ना, आषाढ़भूति, आदि आलेख्य योग्य हैं। ये पात्र सामान्यतः राजपुत्र या कुलीन वंशोत्पन्न होते हैं। सांसारिक भोगोपभोग की सभी वस्तुएँ इन्हें सुलभ होती हैं। पर ये संस्कारवश या किसी निमित्त कारण से विरक्त हो जाते और प्रव्रज्या अंगीकार कर लेते हैं। दीक्षित होने के बाद इन पर मुसीबतों के पहाड़ टूटते हैं। पूर्व जन्म के कर्मोदय कभी उपसर्ग बनकर, कभी परीषह बनकर सामने आते हैं। कभी-कभी देवता रूप धारणकर इनकी परीक्षा लेते हैं, इन्हें अपार कष्ट दिया जाता है पर ये अपनी साधना से विचलित नहीं होते। परीक्षा के कठोर आघात इनकी आत्मा को और अधिक मजबूत, उनकी साधना को और अधिक स्वर्णिम तथा उनके परिणामों को और अधिक उच्च बना देते हैं। अन्ततोगत्वा सारे उपसर्ग शान्त होते हैं, वेशधारी देव परास्त होकर इनके चरणों में गिर पड़ते हैं और पुष्पवृष्टि कर इनके गौरव में चार चाँद लगा देते हैं। ये पात्र केवलज्ञान के अधिकारी बनते हैं, लोक-कल्याण के लिए निकल पड़ते हैं और अन्ततः परमपद मोक्ष की प्राप्ति कर अपनी साधना का नवनीत पा लेते हैं। प्रतिनायक परास्त होते हैं पर अन्त तक दुष्ट बनकर नहीं रहते। उनके जीवन में भी परिवर्तन आता है और वे नायक के व्यक्तित्व की किरण से संस्पर्श पा अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं।

अमूर्त्त नायक में 'जीव' या 'चेतन' को गिना जा सकता है तथा नायिका में 'सुमति' को। अमूर्त्त प्रतिनायकों में 'मोह' सबसे बलशाली है और प्रतिनायिका में 'कुमति' को रख सकते हैं। चेतन राजा अपने आन्तरिक गुणों से शत्रु-सेना (मोह) को परास्त कर मुक्ति रूपी गढ़ का अधिपति बन बैठता है।

जैनकाव्य का अधिकांश भाग आगमसिद्धान्त को ही प्रतिपादित करने में लगा है। पर जैनकवियों की दृष्टि यहीं तक सीमित रही हो, ऐसा कहना एकान्त सत्य न होगा। सच तो यह है कि जैनदर्शन की समन्वय भावना ने जैनकवियों की दृष्टि को भी उदार बना दिया है। यही कारण है कि एक ओर तो उन्होंने विष्णु के अवतार समझे जाने वाले राम और कृष्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को भी सामान्य महापुरुष न मानकर विशिष्ट श्रेणी के महापुरुषों में स्थान दिया है। राम बलदेव श्रेणी में हैं तो कृष्ण वासुदेव श्रेणी में। यही नहीं जिन पात्रों को जैनेतर कवियों ने घृणित और बीभत्स दृष्टि से देखा है, उन पात्रों को भी यहाँ समुचित सम्मान दिया गया है। रावण भी यहाँ प्रतिवासुदेव श्रेणी का विशिष्ट पुरुष है। दूसरी ओर जैनेतर आदर्श पात्रों को अपना वर्ण्य विषय बनाकर उनके व्यक्तित्व की महानता का गान किया है। दलपति-विजयकृत 'खुमाण रासो' इस प्रसंग में द्रष्टव्य है। स्वतन्त्र ग्रन्थनिर्माण के साथ-साथ जैनेतर साहित्यकारों द्वारा रचित जैनेतर ग्रन्थों पर विस्तृत और प्रशंसात्मक टीकाएँ भी लिखी गई हैं। इस ओर बीकानेर के पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'क्रिसन रूकमणी री बेलि' पर जैन विद्वानों द्वारा लिखित ७० टीकाओं का उल्लेख किया जा सकता है। यही नहीं जैन विद्वानों ने जैनेतर प्राचीन ग्रन्थों की रक्षा करना भी अपना राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझा और बड़ी आदर भावना के साथ उनकी सुरक्षा की। आज जितने भी जैन भण्डार हैं, उनमें कई प्राचीन महत्त्वपूर्ण जैनेतर ग्रन्थ संरक्षित हैं। इससे भी आगे बढ़कर जैन यतियों ने अमूल्य जैनेतर ग्रन्थों को लिपिबद्ध कर उनका उद्धार किया। यही कारण है कि 'बीसलदेव रासो' की समस्त पुरानी प्रतियाँ लगभग जैनयतियों द्वारा लिखित उपलब्ध होती हैं।

जैन काव्य की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इन कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने के लिए विराट् सांगरूपकों की सृष्टि की। ये सांगरूपक लौकिक और तात्त्विक उपमानों को लेकर निर्मित हुए हैं। इनमें चेतन राजा, आध्यात्मिक दीवाली, मन माली, श्रद्धाश्रीदीप, अध्यात्म होली आदि के रूपक बड़े सटीक हैं। पूरे के पूरे पद में इनका निर्वाह बड़ी खूबी के साथ किया हुआ मिलता है। हिन्दी कवियों में गोस्वामी तुलसीदास रूपकों के बादशाह माने गये हैं। उनके ज्ञानदीपक और भक्तिचिन्तामणि के रूपक बड़े सुन्दर बन पड़े हैं पर मुझे तो लगता है कि यहाँ सामान्य रूप से प्रत्येक जैन कवि ने इन बड़े बड़े भव्य रूपकों का सहारा लिया है। तात्त्विक-सिद्धान्तों को लौकिक व्यवहारों के साथ 'फिट' बैठाकर ये कवि गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक भाव को बड़ी सरलता के साथ समझा सके हैं। निर्गुण सन्त कवियों की तरह विरोध-मूलक वैचित्र्य और उलटबांसियों के दर्शन यहाँ नहीं के बराबर हैं। फिर भी इतना अवश्य है कि कुछ कवियों ने चित्रालंकार काव्य लिखकर अपनी चमत्कारप्रियता का परिचय दिया है। मयूरबन्ध, खड्गबन्ध, छतरीबन्ध, धनुषबन्ध, हस्तीबन्ध, भुजबन्ध, स्वस्तिकबन्ध आदि काव्य प्रकार इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं। जैन काव्य में यों तो सभी रस यथास्थान अभिव्यंजित हुए हैं पर अंगी रस शान्तरस ही है। जैनधर्म की मूल भावना अध्यात्मप्रधान है। वह संसार से विरक्ति और मुक्ति से अनुरक्ति की प्रेरणा देती है। शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक कथा-काव्य का अन्त शान्तरसात्मक ही है। इतना सब कुछ होते हुए भी जैनसाहित्य में शृंगाररस के बड़े भावपूर्ण स्थल और मार्मिक प्रसंग भी देखने को मिलते हैं। विशेष कर विप्रलंभ शृंगार के जो चित्र हैं वे बड़े मर्मस्पर्शी और हृदय को विदीर्ण करने वाले हैं। मिलन के राशि-राशि चित्र वहाँ देखने को मिलते हैं जहाँ कवि 'संयमश्री' के विवाह की रचना करता है। यहाँ जो शृंगार-है वह रीति-कालीन कवियों के भावसौन्दर्य से तुलना में किसी प्रकार कम नहीं है। पर यह स्मरणीय है कि यहाँ शृंगार शान्तरस का सहायक बनकर ही आता है। इस शृंगार वर्णन में मन को सुलाने वाली मादकता नहीं, वरन् आत्मा को जागृत करने वाली मनुहार है।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शृंगार की यह प्रतिक्रिया आवेगमयी बनकर नायक को शान्तरस के समुद्र की गहराई में बहुत दूर तक पैठा देती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जैनकवियों की काव्य-साधना की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है:—

१. ये कवि प्रमुख रूप से साधक और शास्त्रज्ञ रहे हैं। कवित्व इनके लिये गौण रहा है। प्रतिदिन जनमानस को प्रतिबोधित करना उनके कार्यक्रम का मुख्य अंग होने से अपने उपदेश को बोधगम्य और जनसुलभ बनाने की दृष्टि से ये समय समय पर स्तवन, भजन, कथाकाव्य आदि की रचना करते रहे हैं।

२. इन कवियों के काव्य का मूल प्रेरणास्रोत आगम साहित्य और इससे सम्बद्ध कथा-साहित्य रहा है। सुविधा की दृष्टि से इनके काव्य के चार वर्ग किये जा सकते हैं—चरितकाव्य, उत्सवकाव्य, नीतिकाव्य और स्तुतिकाव्य। चरितकाव्य में सामान्यत: तीर्थंकरों, गणधरों, महान् आचार्यों, निष्ठावान् श्रावकों सतियों आदि की कथा कही गई है। रामायण और महाभारत को अपने ढंग से ढालों में निबद्ध कर उनके आदर्शों का व्यापक प्रचार प्रसार करने में ये बड़े सफल रहे हैं। ये काव्य रास, चौपाई, ढाल, सज्झाय, संधि, प्रबन्ध, चौढालिया, पंचढालिया, षटढालिया, सप्तढालिया, चरित कथा आदि रूपों में लिखे गये हैं। उत्सवकाव्य विभिन्न आध्यात्मिक पर्वों और ऋतु विशेष के बदलते हुए वातावरण को माध्यम बनाकर लिखे गये हैं। इनमें सामान्यत: लौकिक रीति-नीति को सांगरूपक के माध्यम से लोकोतर रूप में ढाला है। नीति काव्य जीवनोपयोगी उपदेशों तथा तात्त्विक सिद्धान्तों से सम्बन्धित है। इनमें सदाचारपालन, कषाय-त्याग, सप्तव्यसन-त्याग, ब्रह्मचर्य, व्रत-प्रत्याख्यान, बारह भावना, ज्ञानदर्शन, चारित्र, तप, दया, दान, संयम आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। स्तुतिकाव्य चौवीस तीर्थंकरों, बीस विहरमानों और महान् आचार्यों तथा मुनियों से सम्बन्धित है।

३. इन विभिन्न काव्यों का महत्त्व दो दृष्टियों से विशेष है। साहित्यिक दृष्टि से इन कवियों ने महाकाव्य और खण्डकाव्यों के बीच काव्यरूपों के कई नये स्तर कायम किये और उनमें लोकसंगीत का विशेष सौन्दर्य भरा। वर्ण्य विषय की दृष्टि से अधिकांश चरित काव्यों में कथा की कोई नवीनता या मौलिकता नहीं है। पिष्टपेषण मात्र सा लगता है। एक ही चरित्र को विभिन्न रूपों में बार-बार गाया गया है पर इन कथाओं के माध्यम से क्षेत्रीय लोकजीवन और लोकसंस्कृति का जो चित्र अंकित किया गया है, वह सांस्कृतिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। आगमिक कथाओं के अतिरिक्त अपनी परम्परा से सम्बद्ध जिन महान् आचार्यों, मुनियों और साध्वियों पर जो सज्झाय, स्तवन और ढालें लिखी गई हैं, उनमें ऐतिहासिक शोध की पर्याप्त सामग्री है।

४. ये कवि मूल रूप से धार्मिक क्रांति और सामाजिक जागरण से जुड़े हुए हैं। इस कारण इन कवियों में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त आडम्बर, बाह्याचार, रूढ़िवादिता और जड़ता के प्रति स्वाभाविक रूप से विद्रोह की भावना रही है। इन्होंने सदैव निर्मल संयम-साधना, आंतरिक पवित्रता और साध्वाचार की कठोर मर्यादा पर बल दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. ये कवि जन्मना राजस्थानी होकर भी अपने साधनाकाल में विभिन्न क्षेत्रों में पद-विहार करते रहे हैं। इस कारण इनकी भाषा में स्वाभाविक रूप से अन्य प्रान्तों के देशज शब्दों का समावेश हो गया है। भाषा के क्षेत्र में इन कवियों का दृष्टिकोण बड़ा उदार और लचीला रहा है। इन्होंने सदैव तत्सम प्रयोगों के स्थान पर तद्भव प्रयोगों को विशेष महत्त्व दिया है। भाषा की रूढ़िबद्धता से ये सदैव दूर रहे हैं। यही कारण है कि इनके काव्यों में भले ही रीतिकालीन कवियों सा चमत्कार प्रदर्शन और कलात्मक सौन्दर्य न मिले, पर भाषाविज्ञान की दृष्टि से इनके अध्ययन का विशेष महत्त्व है। अलंकारों के प्रयोग में ये बड़े सजग रहे हैं। उपमानों के चयन में इनकी दृष्टि शास्त्रीयता की अपेक्षा लोकजीवन पर अधिक टिकी है। लम्बे लम्बे सांगरूपक बांधने में ये विशेष दक्ष प्रतीत होते हैं।

६. छन्द के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान है। जहाँ एक ओर इन्होंने प्रचलित मात्रिक और वर्णिक छन्दों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, वहाँ दूसरी ओर विभिन्न छन्दों को मिलाकर कई नये छन्दों की सर्जना की है। ये कवि अपने काव्य का सर्जन मुख्यत: जन-मानस को प्रतिबोधित करने के उद्देश्य से किया करते थे, अत: समय-समय पर प्रचलित लोक धुनों और लोकप्रिय तर्जों को अपनाना ये कभी नहीं भूले। जहाँ वैराग्य-प्रधान कवित्त और सवैये लिखकर इन्होंने मां भारती का भण्डार भरा, वहाँ ख्यालों में प्रचलित तोड़े भी इनकी पहुँच से नहीं बचे। गजल और फिल्मी धुन के प्रयोग भी आध्यात्म के क्षेत्र में ये बड़ी कुशलता से कर सके हैं।

७. साहित्य निर्माण के साथ-साथ प्रति-लेखन और साहित्य-संरक्षण में भी इन कवियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कई मुनियों और साध्वियों ने अपने जीवन में सैकड़ों मूल्यवान् और दुर्लभ ग्रन्थों का प्रतिलेखन कर, उन्हें कालकवलित होने से बचाया है। साहित्य के संरक्षण और प्रतिलेखन में इन्होंने कभी भी साम्प्रदायिक दृष्टि को महत्त्व नहीं दिया। जो भी इन्हें ज्ञानवर्द्धक, जनहितकारी और साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान् लगा, फिर चाहे वह जैन हो या जैनेतर, उसका संग्रह-संरक्षण अवश्य किया। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक देन की दृष्टि से इनका यह योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

—२३५ ए, तिलकनगर, जयपुर (राज.)

□□

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org